चतुर्भुज सहाय

डॉ० चतुर्भुज सहाय (1883 - 1957) भारत के एक सन्त पुरुष एवं समर्थ गुरु थे जिन्होने अपने गुरु महात्मा रामचंद्र जी महाराज के नाम पर मथुरा में रामाश्रम सत्संग,मथुरा की स्थापना की।

जीवन-परिचय

जन्म तथा शिक्षा

डॉ० चतुर्भुज सहाय जी का जन्म विक्रम संवत-1840, वर्ष 1883, शरदऋतु में कार्तिक शुल्क पक्ष की चतुर्थी के दिन कुलश्रेष्ठ (कायस्थ) वंश में चमकरी ग्राम में हुआ था जो एटा प्रांत से जलेसर की सड़क पर 2 मील पर स्थित है। आपके पिता श्रीयुत रामप्रसाद जी वहाँ के बड़े जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उस समय उनके जमींदारी थी, घर सब प्रकार से संपन्न था। पिता बड़े धार्मिक विचार के व्यक्ति थे तथा साधु महात्माओं का बड़ा आदर करते थे। वे स्वयं एक सिद्ध पुरुष थे और अनेकों बातें सूर्य को देखकर बता दिया करते थे। घर पर आए दिन पूजा पाठ-कथा-वार्ता हुआ करती थी और हर वर्ष किसी न किसी पुराण की कथा किसी विद्वान पंडित से करवाया करते थे। आप स्वयं भी विद्वान थे और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। ज्योतिष का बड़ा गहन अध्ययन किया था। कुछ पुस्तकें भी लिखीं जो हस्तलिखित रूप में आज भी मौजूद हैं।

इनकी माता इन्हें जन्म देने के 2-3 वर्ष बाद ही परलोक सिधार गईं। इनके लालन-पालन का संपूर्ण भार पिताजी पर आया जिन्होंने सब प्रकार से उन्हें योग्य बनाने की पूरी चेष्टा की। घर के धार्मिक एवं सात्विक वातावरण तथा जन्म के संस्कारों की गहरी छाप गुरुदेव पर पड़ी। उन्हें अन्य बालकों के साथ खेलना और शोर मचाना अच्छा नहीं लगता था। आपके माता पिता दोनों के विचार बड़े धार्मिक थे। बालपन में आपको कथा अथवा धार्मिक कहानी सुनने का बड़ा शौक था। जब कोई पंडित कथा कहते तो आप अत्यंत समीप बैठकर ध्यान से सुनते रहते। स्वाभाव शांत और एकांतप्रिय था।[1] वे सदैव बड़ों के पास बैठकर चुपचान उनकी बातें सुनने में आनन्द लिया करते थे। इन सब बातों ने उनके भगवत् प्रेम को उभारा और उन्हें चिंतनशील बना दिया।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा उर्दू व फारसी की हुई, साथ ही एक पंडित ने नागरी ज्ञान भी कराया। आगे चलकर अंगेजी की भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया और थोड़े ही समय में विद्या उपार्जन कर ली। आपको घुड़सवारी का बड़ा शौक था। बड़े होने पर आयुर्वेद, इलैक्ट्रोपैथी तथा होम्योपैथी सीखी। 18 वर्ष की आयु में आप अपनी ननिहाल फतेहगढ़ चले आए और वहाँ कई वर्ष तक डाक्टरी की प्राइवेट प्रैक्टिस करते रहे।

अध्यात्म विद्या का शौक प्रारंभ से ही आपको रहा इसलिए फतेहगढ़ में गंगा किनारे रहने वाले अनेक साधु महात्माओं से प्रायः मिलते रहते थे। उनसे अनेक प्रकार के प्राणायाम तथा हठयोग आदि

की अनेक क्रियाओं को सीखा व अभ्यास किया, परंतु संतुष्टि किसी से भी नहीं हुई। मन में जो अशांति व भविष्य की चिंता रहती थी वह इन उपायों से दूर नहीं हुई। आपका मन किसी और ही वस्तु की खोज में था जो विद्वानों तथा इन साधु सन्यासियों से भी प्राप्त नहीं हुई।

उस जमाने में आर्य समाज एक अच्छी संस्था थी। मित्रों के आग्रह पर वे आर्य समाज में दाखिल हो गए और देश सेवा के विचार से प्रचार का कार्य बड़े उत्साह से किया। इसी समय आपने वेद,उपनिषदों, पुराणों आदि का अध्ययन किया और अपनी योग्यता तथा क्रियाशीलता के कारण फतेहगढ़ तथा आगरा में हाई सर्किल के मेम्बर भी रहे। परन्तु आगे चलकर वहां की अव्यवस्था को देख कर आपको ग्लानि हुई और वहां से विदा ली।

आपको संगीत का भी बड़ा शौक रहा। लेकिन आगे चलकर ब्रहविद्या का अमृतपान कर सारे रस फीके लगने लगे और संगीत के अभ्यास से भी हाथ खींच लिया तथा मन की डोर किसी और के चरणों में अटका दी। संगीत को वे भगवान् की प्राप्ति का सरल और शीघ्र फल देने वाला साधन मानते थे। आप कहा करते थे कि संगीत जानने वालों को अपने भाव भगवान् को संबोधन करके अत्यन्त विनम्र तथा मधुर भाव से एकांत में सुनाने चाहिए, इससे वे आशुतोष बड़ी जल्दी रीझते हैं। दुनियाँ वालों के लिए इस प्रतिभा को नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं है। इसीलिए सत्संगों तथा भंडारों में वे संगीतज्ञों और गायकों से रात के 12-1 बजे तक मधुर भक्ति-भजन सुना करते थे और प्रेम विह्वल हो जाते थे। आंसुओं की माला बिखरने लगती थी।

गृहस्थ जीवन

आप एक गृहस्थ संत थे। आपका विवाह श्रीमती इंद्रा देवी (परम संत पूज्य जिया माँ) से हुआ, जिन्होंने आप के बाद आपके द्वारा स्थापित रामाश्रम सत्संग मथुरा का अपने पूरे जीवन काल तक संचालन किया और अपने मौन उपदेशों से आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का मार्ग दर्शन किया। आपकी दो पुत्रियां और तीन पुत्र थे। आपके बड़े पुत्र परम संत डॉक्टर बृजेन्द्र कुमार जी थे। आप ने मेडिकल सुप्रीटेंडेंट के पद से अवकाश ग्रहण किया। आप के दूसरे पुत्र परम संत श्री हेमेंद्र कुमार जी थे तथा तृतीय पुत्र परम संत डॉक्टर नरेंद्र कुमार जी थे। आप के तीनो ही पुत्रों ने आपको अपना गुरु मान कर ही अपना जीवन निर्वाह किया तथा ये सभी अध्यात्म विद्या के पूर्ण धनी थे और अपना सारा जीवन गुरु के मिशन की निष्काम भाव से सेवा करते रहे। आपकी दोनों पुत्रियाँ परम संत श्रीमती श्रद्धा और परम संत श्रीमती सुधा कुलीन व् आध्यात्मिक परिवार में विवाह के पश्चात भी आपके मिशन की सेवा में जीवन पर्यन्त लगी रहीं।

गुरुदर्शन

श्री गुरुदेव को अपने गुरु (श्री मन्महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, फतेहगढ़) के प्रथम दर्शन गुरुमाता के इलाज के सम्बन्ध में 1910-11 में हुए। उनके सरल स्वभाव और साधारण गृहस्थ वेश ने पहले तो

उन्हें भ्रम में डाल दिया और कई महीने के मेल मिलाप से भी वे इस बात को न समझ पाए कि वह कोई अलौकिक महापुरुष हैं जिनकी आत्मा किसी ऊँचे स्थान की सैर करती हुई हर समय शांत और प्रसन्न रहती है। कुछ समय बाद फतेहगढ़ में प्लेग का प्रकोप हुआ और आप राजा तिर्वा की कोठी में आ गए। फारसी में एक मसल है कि प्रेम पहले प्रेमपात्र के हृदय में उत्पन्न होता है। महात्माजी महाराज के अंदर यह ख्याल हुआ कि यह अधिकारी व्यक्ति हैं, इन्हें ब्रह्मज्ञान देना ही चाहिए।

एक दिन उन से बोले - "डाक्टर साहब! प्लेग की वजह से बाल-बच्चे तो हम भी घर भेज रहे हैं, अगर आपके पास जगह हो तो हम भी वहीं आ जाएँ।" आप ने इसका स्वागत किया और दोनों एक साथ उस कोठी में रहने लगे। उनका कहना था कि अज्ञात रूप से उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचा। महात्माजी महाराज को बड़ा ही सुरीला कंठ प्राप्त था और बड़ा अच्छा गाते थे। एक दिन उन्होंने उन्हें गुनगुनाते हुए सुना। आप कहने लगे - 'आपको कंठ तो बड़ा सुरीला मिला है। किसी से इस विद्या (संगीत) को सीखा क्यों नहीं। 'महात्मा जी बोले- "शौक तो हुआ था पर बाद में एक ऐसी चीज़ मिल गई जिसने इस शौक को छुड़ा दिया और कोई दूसरा ही चस्का लग गया।" गुरुदेव के मन में कुरेद होने लगी। "संगीत तो सब विद्याओं की विद्या है। जीवन में आनंद प्रदान करने वाला ज्ञान इससे बढ़कर कोई नहीं। हाँ, केवल 'ब्रह्मविद्या' ही ऐसी है जिसके आगे यह भी फीकी पड़ जाती है।" उधर से खिंचाव था ही इन्हें भी आकर्षण हुआ और वे पूछ ही बैठे - "क्या आप अध्यात्म विद्या को जानते हैं ?"पर उस समय वे बात टाल गये।

कुछ दिन बाद वे दोनों गंगा किनारे टहलने के लिए निकले। कहते हैं हर चीज़ का समय होता है, फकीरों की भी मौज होती है। महात्मा जी को मौज आ गई। अंदर का प्रेम तरंगें मार रहा था, आज उसका समय आ पहुँचा था। बोले - "डाक्टर साहब मैं इस विद्या को जानता हूँ और आज मैं तुम्हें इसका सबक दूँगा।" अप्रैल का महीना था। वसंत वृक्ष, पल्लवों तथा लताओं के बहाने अपना संगीत सुना रहा था। ऐसे आनंदमय प्राकृतिक दृश्यों के बीच गुरुदेव महात्मा जी महाराज के साथ नवखंडों के टीलों पर से गुजरते हुए बस्ती से लगभग दो मील बाहर निकल गए। आगे एक सुनसान जंगल पड़ा जहाँ मनुष्य देखने मात्र को नहीं था। दोनों आगे बढ़े, देखा - किसी साधु की कुटिया है परन्तु साधु वहाँ नहीं है। ऐसा ज्ञात होता था कि वह उसे छोड़कर कहीं बाहर चला गया है। फूँस की उस झोंपड़ी के आगे कुछ जमीन लिपी हुई साफ पड़ी थी, चारों ओर के घने वृक्षों ने उसे सुरखित कर रखा था। वहीं महात्माजी ठहर गए और आप से बोले - 'आओ! तुम्हें आनंददायिनी ब्रह्मविद्या का साधन बताएं।' यह सन् 1912 की बात है। कहा - "आँखें बन्द करो और इस प्रकार ध्यान करो।" ध्यान करने में दो तीन मिनट बाद ही उन्हें शरीर का भान जाता रहा। ऐसा भान पड़ा कि वह फूल की तरह हल्के हो गए हैं और ऊपर उठ रहे हैं। कोई अद्भुत शक्ति ऊपर खींच रही है। कुछ देर बाद वह भी जाता रहा और उन्होंने अपने को उस स्थान पर पाया जिसे शास्त्रों में विज्ञानमय कोष की सम्प्रज्ञात समाधि का नाम दिया है। फिर बोले - 'बंद करो।' उन्होंने आंख खोल दी। महात्मा जी कहने लगे - "तुम्हारा आरम्भ हमने विज्ञानमय कोष से कराया है, नीचे के तीन स्थान,अन्नमय, प्राणमय व

मनोमय में व्यर्थ ही समय नष्ट होता इसलिए उन्हें छुड़ा दिया है और उनके ऊपर तुम्हें पहुँचा दिया है।" उसी समय अनेक सिद्धियों और शक्तियों के उभारने की क्रियाएँ भी बतायीं। वायु में जड़ तक पहुँचने की सिद्धि को छोड़कर शेष सभी सिद्धियाँ बता डालीं। साथ ही उनसे काम न लेने का भी वचन लिया। इसी समय यह आशीर्वाद भी दिया कि इसी जन्म में तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। इसके पश्चात् महात्मा जी महाराज ने कहा - "इस साधन को रोजाना नियम से 15 या 20 मिनट लिया करो। इससे तुम्हें वह बात हासिल होगी जो पचासों वर्षों के कठिन तप व परिश्रम से भी लोगों को नसीब नहीं होती। दो दिन बाद ही तुम्हारे मन की दशा बदलने लगेगी, वह शांत और प्रसन्न रहने लगेगा, दुनियाँ की ओर से उसका लगाव भी धीरे-धीरे कम होने लगेगा और फिर तुम्हारे अधिकार में आ जाएगा। यह सबसे ऊँचा और सरल योग है। शास्त्रों ने इसे 'साम्ययोग' और संतों ने 'सहजयोग' का नाम दिया है।" विश्वास पूर्वक उस दिन से आपने साधना करना प्रारंभ कर दिया और उनके सत्संग का लाभ उठाया।

आप कहते थे कि तीसरी साल जब में गुरुदेव के दर्शन को गया तो यह सोच ही रहा था कि मेरे साथी सब आगे निकल गये, मैं ही पीछे रह गया, महात्मा जी महाराज ने कहा! डाक्टर साहब आप इस चारपाई पर लेट जाओ। मैं लेट गया। आप भोजन करने चले गये। "उसी समय मुझे विराट स्वरूप का दर्शन हुआ, सम्पूण विभूतियाँ तथा आत्म विद्या के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान हुआ जो मुझ जैसे आदमी के लिए अलौकिक ही नहीं असम्भव भी था।" महात्मा जी हँसते हुए आए और कहने लगे, "डाक्टर साहब इस चीज को सम्भाल कर रखियेगा।" इस प्रकार आपको सारा ज्ञान अपने गुरुदेव से प्राप्त हुआ। परन्तु आपने कितना त्याग किया, कितनी-कितनी कठिनाइयाँ सहीं, किस प्रकार गुरु सेवा की उनके जीन चरित्र में पा सकोगे। स्थानाभाव से यहाँ संक्षेप में यह बताने का प्रयास किया गया है।

प्रचार

श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार आपने इस ब्रह्म विद्या को फैलाने का संकल्प किया। आपकी हार्दिक इच्छा थी- इस अमूल्य ज्ञान को, जिसमें कुछ खर्च नहीं, अधिक परिश्रम भी नहीं, आज भी इस बाबू पार्टी में कैसे फैलाया जाय। सन् 1923 ई0 में आप एटा आए यहाँ आपके पास कुछ जिज्ञासु आने लगे। महात्मा जी महाराज ने आपको आदेश दिया कि इस विद्या के प्रचार में जुट जाओ। जो चीज तुमको मिली है उसका दूसरे भूले-भटकों में प्रचार करने से गुरु ऋण से मुक्ति मिल जायेगी। हृदय की महानता को गरीबी कुचल नहीं सकती, आर्थिक संकट उन्हें संकुचित नहीं बना सकता। उन दिव्य आत्माओं के अंदर तो विश्व प्रेम का अपार स्रोत होता ही है , हमारे गुरुदेव जी की भी वही दशा थी। वे जो कुछ करते थे वह ईश्वर परायण भाव से, ईश्वर की इच्छा से, ईश्वर के भरोसे पर। [2]|आप तन-मन-धन से इधर लग गये। प्रैक्टिस का काम भी ढीला पड़ गया। आमदनी भी कम हुई। इधर-उधर

का आना-जाना हो गया, घर पर नित्य नये मेहमानों का आना आरम्भ हुआ, बड़ी कठिनाई का सामना पड़ा पर साहस नहीं छोड़ा, घर में काफी खर्च था किन्तु जिस प्रकार आप इधर लगे उसी प्रकार आपकी उदार हृदया-सहधर्मिर्णी (हमारी गुरु-माता) ने भी पूर्ण साथ दिया। आने वालों के सारे सत्कार का भार उन्हीं पर था। भोजन अपने हाथ से बना सबको खिलातीं, फिर घर का सारा काम-काज, बच्चों की देखभाल यानी सवेरे 4 बजे से रात्रि 12 बजे तक का सारा समय काम-धन्धा तथा सेवा में ही व्यतीत होता था। इतना होने पर भी सदैव प्रसन्न-चित्त रहती थीं। अपने गुरु कार्य संपादन में शारीरिक एवं आर्थिक कष्टों को झेलते हुए कभी मन मैला नहीं किया और नित्य नूतन सहस और उमंग के साथ उसको सर- अंजाम देते रहे। इसके अतिरिक्त सांसारिक कार्य क्षेत्र में भी चिकित्सा द्वारा अल्प आय जिसमे घर का खर्च चलाना भी मुमकिन नहीं था, उस पर भी गरीब और अनाथ रोगियों को मुफ्त दवा बांटते रहते थे।

आध्यात्मिक साहित्य और कृतियाँ

श्री महात्माजी महाराज की आज्ञा थी कि इस विद्या को शास्त्र सम्मत बनाकर ऐसे साहित्य का भी सृजन किया जाये जिससे आज कल के जिज्ञासुओं को लाभ पहुंचे। इसी को ध्यान में रखते हुए आपने इस विद्या के सारे अनुभव जो अपने गुरुदेव श्री महात्मा जी महाराज से आपको प्राप्त हुए थे तथा उन अनुभवों का उपनिषदों, वेदों, गीता, रामायण और श्रीमद् भगवद महापुराण से मिलान करके एक बृहद वाङ्मय,परमार्थ के जिज्ञासुओं के लिए तैयार किया जो साधन प्रकाशन,मथुरा (भारत) द्वारा प्रकाशित है। ये रचनाएँ अत्यंत सरल भाषा में लिखी गई हैं जिससे सामान्य पढ़ा लिखा वर्ग भी बड़ी आसानी से समझ सकता है। आपका मानना था कि अब जमाना बदल रहा है, अतः सामान्य जिज्ञासुओं के लिए ऐसा साहित्य हो जो आसानी से ग्राह्य हो।

अतःप्रचार के लिए आपने "साधन-पत्र" के साथ-साथ और भी पुस्तकों का लेखन आरम्भ कर दिया। भक्तों के चरित्र आपको पहले से ही पसन्द थे। आदेशानुसार आप गुरु संदेश घर-घर पहुँचाने में तन, मन, धन से जुट गये। आप ने ग्रन्थों की रचना भी शुरू कर दी। सन्त तुकाराम, श्री आमन देवी (दोनों भाग), श्री सहजोबाई की पुस्तकें आप ने पूज्य महात्मा जी महाराज के जीवन काल में लिख कर प्रकाशित करायीं। जब आपने भक्त-शिरोमणि-माता मीराबाई का चरित्र लिखने का संकल्प किया तो उनके जीवन के सम्बन्ध में लिखी हुई पुस्तकें पढ़ी किन्तु यह सब एक मत नहीं थीं। सोचा कि इनमें सही कौन सी है, इसकी खोज करनी चाहिए। इसके लिए आप मेड़ता गये वहाँ उनके मन्दिर में भगवान गिरधरलाल जी तथा मीरा के दर्शन किये। परन्तु कुछ ठीक पता वहाँ भी नहीं लगा। फिर चित्तौड़ पहुँचे। वहां महाराज के पुस्तकालय में हस्तलिखित राज्य-विभाग में मीरा का चरित्र पढ़ने को मिला, उसमें सब देख कर फिर आप वापस आए और एक रात बैठ कर प्रार्थना की -"माँ! मैं तेरा सुन्दर चरित्र लिखने का संकल्प कर चुका हूँ परन्तु इन अलग-अलग विचार धाराओं को देख कुछ हिम्मत नहीं पड़ती। यदि आप ही कृपा करके मुझे अपना परिचय दें तो मैं लिख सकूँ। मैं आपका

चरित्र लिखने योग्य तो नहीं हूँ परन्तु इससे बहुतों का कल्याण होगा इसीलिए आप ही कृपा करें और मुझे यह बतलायें कि कौन विचार सही है। "रात्रि बीत गई सवेरे का समय हुआ, आप ध्यान में बैठे ही थे देखा कि माता मीरा सामने खड़ी हैं और लिखने के लिए आशीर्वाद दे रही हैं। आप कहते थे- यह लेखमाला "मीराबाई" मैंने ठीक उसी प्रकार लिखी हैं, जैसे कोई बताता गया हो और मैं लिखता गया हूँ। यह पुस्तकें साधकों के लिए बड़ी अमूल्य हैं।साधन और पुस्तकों ने बड़ा काम किया। साधक दूर-दूर से आने लगे। लिखने के शैली डॉक्टर साहिब की बड़ी सरल और सुगम थी। दर्शन शास्त्रों में भी उनकी गति अच्छी थी। कठिन से कठिन और गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों को सरलता से सम्मुख रख देना आपकी शैली थी। आप ने बड़े परिश्रम से जिज्ञासुओं के लाभार्थ यह साहित्य तैयार किया। उनकी कुछ मुख्य पुस्तकों की सूची निम्नलिखित है -

1. साधना के अनुभव (सात खण्डों में प्रकाशित एवं सजिल्द)
2. आध्यात्मिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य
3. योग फिलासफी और नवीन साधना
4. अलौकिक भक्तियोग
5. आध्यात्मिक विषय मीमांसा (भाग- १ और २)
6. श्री रामचंद्र जी महाराज (जीवनी तथा उपदेश)

उपदेश व् शिक्षाएं

आपके मुख्य उपदेश व् शिक्षाएं अध्यात्म को व्यावहारिक जगत में उतारने की थीं। आप का कहना था, अध्यात्म विद्या का सही रूप आपके व्यवहार से प्रकट होता है। गृहस्थी में रहते हुए हमें अपने को ईश्वर के मार्ग पर लगाना है; गृहस्थ अपने सारे व्यावहारिक कार्यों को करता हुआ प्रभु की उपासना कर सकता है और ईश्वर प्राप्त कर सकता है। आप कहते थे तुम 23 घंटे संसार के कार्य करो परन्तु एक घंटे ईश्वर की ओर दो और फिर संसार को उतनी देर के लिए भूल जाओ। आप कहते थे उससे मिलो जिसने ईश्वर देखा है, वही तुम्हें ईश्वर का दर्शन करा सकता है। आपकी साधना मुख्यतः कर्म, उपासना और ज्ञान की मिलोनी है। इसको अपनाने से जिज्ञासु थोड़े ही समय में दृष्टा भाव में प्रतिष्ठित हो जाता है जो गीता का असली प्रयोगात्मक स्वरुप है। इसी लिए यह दृष्टा साधन भी कहलाता है। किसी भी मत का उपासक इस साधना को कर सकता है तथा इसमें किसी भी धर्म, जाति और देश का बंधन नहीं है। आज लाखों संख्या में जिज्ञासु भाई - बहन इसको अपनाकर आध्यात्मिक लाभ ले रहे हैं।

परमार्थ पथ के दस आलोक

1. ईश्वर तो एक शक्ति (पावर) है, न उसका कोई नाम है न रूप। जिसने जो नाम रख लिया वही ठीक है।

2. उसको प्राप्त करने के लिए गृहस्थी त्याग कर जंगल में भटकने की आवश्यकता नहीं, वह घर में रहने पर भी प्राप्त हो सकता है।
3. अभी तुमने ईश्वर देखा नहीं है, इसीलिये उसे प्राप्त करने के लिए पहले उससे मिलो जिसने ईश्वर देखा है। वही तुम्हें ईश्वर का दर्शन करा सकता है।
4. अपने जीवन में आन्तरिक प्रसन्नता लाओ। यह बहुत बड़ा ईश्वरीय गुण है।
5. ज्ञान में शान्ति है, वह तुम्हें बाहर से नहीं मिलेगी। ज्ञान अन्तर में है, उसके लिये आन्तरिक साधन करने होंगे।
6. अधिक समय तुम संसार के कामों में लगाओ, थोड़ा समय इधर दो। लेकिन इतने समय के लिये तुम संसार को भूल जाओ।
7. दो काम साधक के लिये बहुत ही आवश्यक हैं - एक तो अपने परिश्रम से भोजन कमाना और दूसरा अपने मन को हर समय काम में लगाये रखना।
8. ज्ञान अनन्त है। यदि एक गुरु उसे पूरा न कर सके तो दूसरे गुरु से प्राप्त करना चाहिये। परन्तु पूर्ण आत्म-ज्ञानी गुरु मिल जाने पर दूसरा गुरु नहीं करना चाहिये।
9. दुनिया के सारे काम करो लेकिन सेवक बनकर, मालिक बनकर नहीं।
10. संसार में मेहमान बनकर रहो। यहाँ की हर वस्तु किसी और की समझो। मैं और मेरा छोड़ कर तू और तेरा का पाठ सीखो।